

प्रवचन नं. १२३ गाथा-४९, दिनाङ्क ३१-१०-१९७८, मंगलवार
आसोज कृष्ण अमावस्या, वीर निर्वाण संवत् २५०४

आज दीपावली का दिन है। भगवान महावीर परमात्मा को आज पूर्ण आनन्द की पर्याय प्रगट हुई थी पहले भी। अनन्त गुण में जो प्रतिजीवी गुण का विकार था, उसका भी नाश करके आज मोक्ष पधारे हैं। आहाहा! जिन्हें अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, ज्ञान (सर्व गुणों की) सिद्धपद की पर्याय प्राप्त हुई। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में थे, वहाँ तक अभी उदयभाव था, वहाँ तक तो अभी सांसारिक कहलाते थे। आहाहा!

श्रोता : चौदहवें गुणस्थान में भी असिद्ध ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिजीवी गुण... जितने अपने में अनन्तानन्त गुण हैं, उन सबकी पूर्ण पर्याय प्रगट हो और प्राप्त हो, उसका नाम मोक्ष और सिद्धपद-प्रभु कहलाता है। अनादि संसार (पर्याय का) अन्त किया और सिद्धपद की शुरुआत की। 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में!' आहाहा! उस मोक्ष का दिन आज है। वास्तव में तो दीपावली है (दीपावली अर्थात्) वास्तव में तो जिसने दिन वाल्या - जिसकी जिसे आत्मा की पूर्ण दशा प्रगट की, उसे यहाँ दीपावली कहा जाता है।

समयसार (टीका के) शब्द में आया है न! चार बोल। (अब) पाँचवाँ बोल, जरा संक्षिप्त संक्षिप्त से लेंगे और फिर अव्यक्त के बोल पर जायेंगे।

पाँचवाँ बोल है। जो आत्मा है, वह शब्द की पर्याय को करनेवाला नहीं है। आहाहा! जो आवाज है, वह पुद्गल की पर्याय है तो यह आत्मा उसका करनेवाला तो नहीं परन्तु उसकी द्रव्येन्द्रिय से स्वामी होकर सुननेवाला भी नहीं और भावेन्द्रिय से भी सुननेवाला नहीं। ऐसा आत्मा! पता नहीं क्या चीज़ है? यह चार बोल तो आ गये हैं।

यह पाँचवाँ बोल - **सकल विषयों के विशेषों में साधारण...** जगत् में जितने विषय हैं, उन्हें भगवान का-आत्मा का ज्ञानसाधारण (होने से) सबका जाननेवाला एक है। अमुक को जाने और अमुक को न जाने ऐसा नहीं है। आहाहा! अभी, वर्तमान, हों! आहाहा! **सकल विषयों के विशेषों में साधारण ऐसे एक ही संवेदनपरिणामरूप**

(उसका स्वभाव होने से)... उसका स्वभाव जानना-देखना, अकेला स्वभाव उसका-आत्मा का है - ऐसा सम्यग्दर्शन में प्रतीति करना, उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी कहा जाता है। यह पाँचवाँ बोल, यह (आत्मा) ऐसा होकर शब्द को नहीं सुनता।

अब (उसे समस्त ज्ञेयों का ज्ञान होता है...) भगवान आत्मा, यह ज्ञान है, समस्त ज्ञेयों का ज्ञान करता है। किसी ज्ञेय को बनाता नहीं और (किसी) ज्ञेय को अपने में लाता नहीं और (सर्व) ज्ञेयों का ज्ञान होता है, तो ज्ञेयरूप होकर ज्ञान होता है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। है ? सकल ज्ञेयज्ञायक के तादात्म्य का निषेध होने से... शब्द की पर्याय को जानता है आत्मा अभी, तथापि शब्द की पर्याय में (ज्ञान) तादात्म्य नहीं-एकरूप नहीं। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहने में आता है। आहाहा! यह छठा बोल है। इस तरह छह प्रकार से शब्द... (छह बोल) हुए।

आहा! (अब ' अनिर्दिष्टसंस्थान ' विशेषण को समझाते हैं —)

(पुद्गलद्रव्यरचित शरीर के संस्थान (आकार) से जीव को संस्थानवाला नहीं कहा जा सकता, इसलिए जीव अनिर्दिष्टसंस्थान है।)

यह आत्मा जो है, आत्मा अन्दर! वर्तमान हों! पुद्गलद्रव्यरचित शरीर... यह शरीर पुद्गलद्रव्य से रचित है, जड़ / मिट्टी यह धूल है, मिट्टी है, पुद्गल है, यह पुद्गल से रचित शरीर है। आहाहा! इसलिए जीव को संस्थानवाला नहीं कहा जा सकता... शरीर के आकार के कारण... वह तो जड़ का आकार है, इसलिए उसे वह आत्मा का आकार है - ऐसा नहीं कहा जाता। शरीर के आकार से भिन्न भगवान है। आहाहा! शरीर की पर्याय जड़ है, भगवान आत्मा अन्दर ज्ञानस्वरूप है। उसका आकार है परन्तु शरीर के आकार से उसका (आत्मा का) आकार है - ऐसा नहीं। प्रदेशत्वगुण है न, तो (आत्मा को) आकार तो है। आहाहा! बहुत कठिन बात!

आकाश नाम का (अरूपी) पदार्थ है, उसका अन्त नहीं तो भी उसका भी आकार तो है। आहाहा! क्या कहा? कहते हैं ऐसे भगवान आत्मा अनन्त अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, इस शरीर से तो भिन्न है, कर्म से अभी भिन्न है और दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव-पुण्य-पाप के भाव से भी यह (भगवान आत्मा) भिन्न है। उनसे तो भिन्न है परन्तु शरीर

के आकार से भी भिन्न है। आहाहा! एक बोल (-देखो टीका में) यहाँ है, इसलिए जीव को संस्थानवाला नहीं कहा जा सकता....

(अपने नियत स्वभाव से अनियत संस्थानवाले अनन्त शरीरों में रहता है, इसलिए अनिर्दिष्टसंस्थान है ॥२ ॥)

आहा! अपने नियत स्वभाव से... भगवान आत्मा नियत (स्वभावी) असंख्य प्रदेशी जो अपना नियत स्वभाव-आकार है, वह (आत्मा) अनियत संस्थान को अनुसर कर रहता है। जिसे एकरूप आकार है, ऐसा अनन्त अनन्त शरीरों में रहता है, फिर भी वह नियत, उसे कोई संस्थान नहीं होता। अनन्त शरीर में होवे तो भी संस्थान-शरीर आत्मा में है - ऐसा नहीं कहा जाता। वह तो अनिर्दिष्टसंस्थान है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को शरीर का आकार, वह आत्मा का आकार है - ऐसा भासित नहीं होता। आहाहा! धर्मी जीव-धर्म करनेवाले धर्मी जीव को शरीर का आकार, वह मेरा आकार है - ऐसा भासित नहीं होता। आहाहा! उसे (धर्मी को) मुझमें पुण्य-पाप (भावकर्म है) - ऐसा भी भासित नहीं होता। मैं तो पुण्य-पाप और शरीर के आकार से भिन्न हूँ। आहाहा! दो बोल हुए।

(संस्थान नामकर्म का विपाक (फल) पुद्गलों में ही कहा जाता है (इसलिए उसके निमित्त से भी आकार नहीं है) इसलिए अनिर्दिष्टसंस्थान है ॥३ ॥

भिन्न-भिन्न संस्थानरूप से परिणामित समस्त वस्तुओं के स्वरूप के साथ जिसकी स्वाभाविक संवेदनशक्ति सम्बन्धित (अर्थात् तदाकार) है ऐसा होने पर भी जिसे समस्त लोक के मिलाप से (सम्बन्ध से) रहित निर्मल (ज्ञानमात्र) अनुभूति हो रही है ऐसा होने से स्वयं अत्यन्तरूप से संस्थान रहित है, इसलिए अनिर्दिष्टसंस्थान है ॥४ ॥)

(क्या कहते हैं) भिन्न-भिन्न संस्थानरूप से परिणामित समस्त वस्तुओं के स्वरूप के साथ... (अर्थात्) अनेक आकारवाली चीजें हैं, उन्हें जानता है, जानने पर भी पर के आकार के सम्बन्ध से (मिलाप से) रहित है! (देखो न!) यह आकार है-पुस्तक का आकार है। अनेक आकार हैं, उन सब आकारों को आत्मा जानता है परन्तु पर के आकारों से मिलाप / सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे आत्मा का अन्दर में अनुभव होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा!

संस्थान नामकर्म का विपाक (फल) पुद्गलों में ही कहा जाता है... यह एक आकार में कह दिया - यह कर्म जो नामकर्म हुआ तो वह शरीर में आया है, आत्मा में तो वह है नहीं। संस्थान (आकार) से परिणमित समस्त वस्तु का वह रूप नहीं। चार ही (बोल हैं)। इन चार हेतुओं से सर्वथा अनिर्दिष्ट संस्थान है। इस प्रकार चार हेतुओं से संस्थान का निषेध कहा।

अब 'अव्यक्त' (विशेषण)... - जानने की महा चीज है। आहाहा! भगवान आत्मा, अन्दर जो आत्मा है, वह छह द्रव्यस्वरूप लोक (छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है और व्यक्त है उससे जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है ॥१॥)

इस जगत में भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य देखे हैं। (उनमें) अनन्त आत्माएँ अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति (काय), एक अधर्मास्ति (काय) और एक आकाश, इन छह द्रव्यस्वरूप जो लोक है। आहाहा! वह तो ज्ञेय है। अनन्त सिद्ध भी ज्ञान में परज्ञेय हैं। आहाहा! (वे ज्ञेय हैं) व्यक्त हैं-बाह्य हैं; उनसे जीव (अन्य) है। छह द्रव्यस्वरूप लोक से तो भगवान आत्मा अन्य (भिन्न) है। क्या कहते हैं ? सुनो, सूक्ष्म बात है, भाई!

जो छहद्रव्यस्वरूप लोक है। एक ओर पूरा लोक और अलोक, वह ज्ञेय है और व्यक्त है, अपने से (आत्मा से) पर, इससे भगवान आत्मा अव्यक्त है (अर्थात्) उससे (लोक से) भिन्न है। धर्मदास क्षुल्लक ने (कहा है कि) सप्तम हो जाता है। ऐसा कहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह आत्मा सप्तम (सातवाँ द्रव्य) हो जाता है। छह द्रव्य हैं तो (आत्मा) छह द्रव्य में ही है, परन्तु छह द्रव्य जो हैं, अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद, अनन्त परमाणु के स्कन्ध आदि, ये सब ज्ञान के परज्ञेय हैं, एक बात; और अपने से (आत्मा से) बाह्य चीज है, इसलिए व्यक्त है, दो बात... परन्तु इससे भगवान आत्मा अभी (भिन्न है), हों! आहाहा!

जीव अन्य (भिन्न) है, यह छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है-जो बाह्य है, प्रगट (है), उससे भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा की दृष्टि, अनुभव होना, उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया ?

बाकी तो... व्रत, तप, भक्ति, पूजा और यात्रा करे, वह कहीं धर्म नहीं है, वह तो

शुभभाव-राग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक तरफ राम और एक तरफ गाँव। एक ओर राम (अर्थात्) भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव से भरपूर पड़ा है प्रभु! (और) एक ओर गाँव अर्थात् ज्ञेय-अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद आदि छह द्रव्यस्वरूप (सम्पूर्ण लोक)। आहाहा! वह आत्मा का-ज्ञायक का परज्ञेय है और पर, व्यक्त है; उससे भगवान (आत्मा) तो भिन्न है। उन ज्ञेयों से-व्यक्त से आत्मा स्वज्ञेय और स्व, पर से (ज्ञेयों से) भिन्न अव्यक्त! आहाहा! ऐसा उसका (आत्मा का स्वरूप है) छह द्रव्यस्वरूप ज्ञेय, उससे भिन्न ज्ञायक! छह द्रव्यस्वरूप व्यक्त है, उनसे भिन्न अव्यक्त (आत्मा)! आहाहा!

ऐसे द्रव्य का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है। वह सप्तम द्रव्य (स्वरूप) आत्मा पर से भिन्न है (उसकी अनुभूति हो), तब उसके भव का अन्त आता है, वरना तो लाख क्रियाकाण्ड करे, पूजा और भक्ति, दया और दान, व्रत और जात्रा (करे), उससे कहीं भव का अन्त नहीं होता। यह शुभभाव स्वयं भवस्वरूप है। जगत को ऐसी बातें कठिन (लगती हैं)।

यहाँ तो भगवान आत्मा (को) अनन्त सिद्ध भी ज्ञेय हैं और आत्मा उन्हें जाननेवाला भिन्न है। आहाहा! अनन्त-अनन्त पंच परमेष्ठी जो त्रिकाली हैं, त्रिकाली जो अरहन्त-भूत (काल में) जो हो गये, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे, वे सभी अरिहन्त, वे सब ज्ञायक में ज्ञेयरूप से भिन्न हैं। आहाहा! ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये, वर्तमान में होते हैं, और भविष्य में होंगे, वे त्रिकाली सिद्ध जो हैं, वे अपने आत्मा को परज्ञेयरूप से हैं-ज्ञान करनेयोग्य हैं (सर्व का) अपने ज्ञान में ज्ञान होता है तो उसरूप आत्मा हो जाता है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

छह द्रव्य की व्यवस्था आत्मा कर सके—मन्दिर बना सके, शास्त्र बना सके, यह वस्तु में है नहीं, यह आत्मा में है नहीं - ऐसा कहते हैं। बनाते हैं तो? बना सकते तो नहीं परन्तु वह चीज अपने में-अपने से परज्ञेयरूप से मौजूद है। अपना भगवान (आत्मा) तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति प्रभु अपने में रहकर अनन्त ज्ञेयों को जानने का अपना स्वभाव होने से, ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक होने से जानता है, बस! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

जैनदर्शन का वास्तविक तत्त्व समझना, यह तो अलौकिक बात है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा-अपनी पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है, तब उसे छह द्रव्य का ज्ञेय से भी स्वयं भिन्न मालूम पड़ता है और जो द्रव्य-जो व्यक्त हैं, उनसे भी मेरी चीज (स्वात्मा) अव्यक्त (अर्थात्) पर्याय में आये नहीं, इस अपेक्षा से (आत्मा को) अव्यक्त (कहते हैं) परन्तु वस्तुरूप से व्यक्त / प्रगट है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान (आत्मा) अन्दर चैतन्य परमात्मस्वरूप वर्तमान में, हों! उस ओर की दृष्टि की तो आत्मा पर से-(ज्ञेय से) भिन्न हो गया! सप्तम (सातवाँ) हो गया। धर्मदास क्षुल्लक ने ऐसा लिखा है, इस गाथा का अर्थ ऐसा निकाला है। नाम नहीं लिखा परन्तु उसका अर्थ यहाँ से निकाला है। आहाहा!

भगवान आत्मा में रागादिभाव होते हैं, वे भी छह द्रव्य में हैं, दया-दान-व्रत-भक्ति के भाव होते हैं, वे अपने आत्मा में नहीं आते, वे तो पर में जाते हैं, वे ज्ञेयरूप से हैं। (उन्हें) जाननेवाला ज्ञायक, ज्ञेय से भिन्न है-एक बात! और रागादि परपदार्थ व्यक्त हैं, बाह्य हैं-प्रगट हैं। आहाहा! उनसे भगवान आत्मा अव्यक्त अर्थात् पर्याय में-बाह्य में आया नहीं। बाह्य में आया नहीं (अर्थात्) पर्याय में आया नहीं। आहाहा! (यह) एक बोल समझना कठिन है, भाई! आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा ऐसा, उसकी अन्तर में दृष्टि करना और पर्याय में जो (निर्विकल्प) आनन्द का अनुभव होना, वह व्यक्त (अर्थात् प्रगट) है। उसे भी ज्ञेयरूप से जानना... द्रव्य तो उसे भी जाननेयोग्य नहीं, भिन्न है। अपनी पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि हुए, अपने चैतन्य (द्रव्य के) अवलम्बन से तो उसे भी-पर्याय को भी ज्ञेयरूप से जानकर, आत्मा ज्ञाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है बापू!

आज यह दीवाली का दिन है, भाई! भगवान (महावीरस्वामी) मोक्ष पधारे हैं आज। आहा! आहाहा! प्रभु! तेरी चीज (आत्मद्रव्य) जो अन्दर है, उसे त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं-आहाहा! सन्त कहते हैं यह उनकी ही बात करते हैं। आहाहा! भगवान! आहाहा! तेरा जो ज्ञायकस्वरूप प्रभु है... आहाहा!

वह पर से-ज्ञेय से (भिन्न) ज्ञान करनेवाला-भिन्न रहकर अपने में, उसके कारण

से नहीं; अपने में अपने कारण से स्व-पर प्रकाशक ज्ञान करनेवाला यह आत्मा पर से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! लोगों ने तो कुछ का कुछ बाहर दया, दान, व्रत, पूजा, यात्रा में धर्म मनवा लिया है। उसे धर्म मानना वह तो मिथ्यात्व-अज्ञान है। आत्मा ऐसा है ही नहीं। आहाहा!

आत्मा तो... आहाहा! ये रागादि परिणाम आते हैं, वे (और) छह द्रव्य में जाते हैं- (पर) ज्ञेयरूप से जाते हैं। आहाहा! और ये रागादिभाव हैं, वे भगवान आत्मा से बाह्य में प्रगट हैं-बाह्य में प्रगट हैं। भगवान आत्मा अन्तर में अभी राग के ज्ञेय से भिन्न है और राग प्रगट है, उससे भी भिन्न है। आहाहा! बाह्य पदार्थ की प्रसिद्धि दिखती है, राग आदि, दया-दान आदि, व्यवहाररत्नत्रय आदि जो बाह्य पदार्थ की प्रसिद्धि दिखती है, उस ज्ञेय से भगवान (आत्मा तो) ज्ञायक (तो) प्रसिद्ध भिन्न है। आहाहा!

रागादि बाह्य पदार्थ, अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त परमेष्ठी हैं, वे व्यक्त हैं। व्यक्त अर्थात् प्रगट / बाह्य हैं। आहाहा! और यह आत्मा उस प्रगट बाह्य चीज से अव्यक्त अर्थात् इसमें (पर्याय में) आया नहीं। पर्याय में आया नहीं। इसमें आया नहीं, इसलिए अव्यक्त कहते हैं (परन्तु) अपनी अपेक्षा से व्यक्त (प्रगट) है। आहाहा! सूक्ष्म बात बापू! वीतराग परमेश्वर ने आत्मा कहा, उन्होंने किसे (आत्मा कहा)? समझ में आया?

‘प्रभु तुम जाणग रीति’, गुजराती है। ‘प्रभु तुम जाणग रीति’ ‘सौ जगत देखता हो लाल’-हे नाथ! आप सम्पूर्ण जगत को देखते हैं। ‘निज सत्ताए शुद्ध’-अपना अस्तित्व-भगवान आत्मा का, उसे तो आप हे नाथ! शुद्ध (सत्ता) रूप से-ज्ञायकरूप से-परज्ञेय के जाननेवाले रूप से-व्यक्त और प्रगट (बाह्य से) भिन्न अप्रगटरूप से, पर की अपेक्षारहित ऐसे अव्यक्तरूप से आप (हे सर्वज्ञ)! आत्मा को देखते हो। आहाहा! ऐसा ही हम देखें, तब आत्मा देखा और सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! समझ में आया?

भगवान (सर्वज्ञ-तीर्थकर) जैसा प्रभु आत्मा को देखते हैं, वह पूर्णानन्द का नाथ, पर ज्ञेय से भिन्न—व्यक्त से भिन्न—अव्यक्त है। बाह्य में आया ही नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ आदि (जो-जो) पदार्थ हैं, उनमें एक आत्मा आया नहीं, अरे! अपनी एक समय की पर्याय जो है, उसमें भी आत्मा आया नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्य

(बिम्ब) है, उसे यहाँ पर की प्रसिद्धि की अपेक्षा से अप्रसिद्ध-अव्यक्त-ऐसा कहा गया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया ?

जयसेनाचार्य ने इसका अर्थ जरा दूसरा किया है। यह अमृतचन्द्राचार्य का अर्थ है। जयसेनाचार्य ने, अव्यक्त अर्थात् मन का विषय जो रागादि-क्रोधादि है, उनसे भिन्न सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म है। मन के विषय राग आदि हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा (आदि के भाव) वे मन का विषय हैं। वे आत्मा का विषय हैं नहीं। वे तो स्थूल का विषय है, उनसे भिन्न भगवान (आत्मा) अन्दर अति सूक्ष्म है। वह (अति सूक्ष्म आत्मा) मन से भी जानने में नहीं आता, विकल्प से भी जानने में नहीं आता, आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र की मदद से भी जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ?

‘अकिंचित्कर’ कहते हैं, कहा था न! बन्ध अधिकार में (समयसार गाथा २६७ भावार्थ :- जो हेतु कुछ भी न करे वह अकिंचित्कर कहलाता है।) ऐसा कि दूसरा दूसरे को बन्ध करा दे, दूसरे को मोक्ष करा दे! किस प्रकार करा दे? उसे बन्ध तो उसकी दशा से-अध्यवसान से, अज्ञानदशा से बन्ध होता है और उसकी वीतरागदशा से उसका मोक्ष होता है, तू क्या कर सकता है पर की (दशा को)? पर का करने में तो तू अकिंचित्कर है-ऐसा पाठ है। संस्कृत टीका में २६७ गाथा बन्ध अधिकार की (है) तू दूसरे को मोक्ष करा देता है? दूसरे को सम्यग्दर्शन करा देता है? आहाहा! दूसरे को सम्यग्ज्ञान करा देता है? (दूसरे को) चारित्र्य करा देता है? यह बात बिल्कुल झूठ है। आहाहा!

दूसरे को सम्यग्ज्ञान तू करा देता है? उपदेश द्वारा ज्ञान होता है या नहीं उसे? उपदेश से जानने में जो आता है ज्ञान! है तो अपनी पर्याय। वह कहीं शब्द से आयी नहीं। वह पर्याय भी सम्यग्ज्ञान नहीं है। वह (शब्द ज्ञान) बाह्य में जाता है-व्यक्त में जाता है। आहाहा! और ज्ञेय में जाता है। शास्त्र का ज्ञान और सुनने से अपनी पर्याय में अपने उपादान से जो ज्ञान हुआ, वह भी बाह्य में-व्यक्त में-ज्ञेय में-परज्ञेय में जाता है - ऐसी बात है। आहाहा!

श्रोता : यह प्रवचन होता है, वह क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचन जड़ की भाषा है यह। कौन करे प्रवचन ?

श्रोता : सुने तो सही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने कौन? यह तो पहले निषेध किया, इन शब्दों में—यह द्रव्येन्द्रिय जो जड़ है, उसका स्वामी आत्मा नहीं है, आत्मा ने वह नहीं किया। (उन शब्दों को) द्रव्येन्द्रिय से जाने और माने? और भावेन्द्रिय जो अन्दर है—जो ज्ञान की पर्याय शब्द को जाने ऐसी भावेन्द्रिय... तो भावेन्द्रिय का स्वामी आत्मा नहीं है। भावेन्द्रिय उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा से भावेन्द्रिय उसका वास्तविकस्वभाव ही नहीं है, तो भावेन्द्रिय से जानता है – ऐसा है नहीं देखो! आहाहा! यह दीवाली! तो भावेन्द्रिय से जानता है, यह भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

लोग कुछ का कुछ मानकर बैठ गये हैं। हम कुछ धर्म समझे हैं और धर्म करते हैं! बापू! आहाहा! जैनधर्म की पद्धति वह कोई अलौकिक है। आहाहा! पद्धति अर्थात् रीति (रीति अर्थात्) विधि... आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। आहाहा! **छह द्रव्यस्वरूप लोक...** देखो! वस्तु-द्रव्य छह हैं जगत में। श्वेताम्बर ने छह द्रव्य नहीं माने, भाई! उन्होंने तो पाँच द्रव्य ही माने हैं, काल द्रव्य तो माना नहीं। अतः अभी तो उनकी छह द्रव्यस्वरूप (लोक) ज्ञेय है, उसमें भी उनकी भूल है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

छह द्रव्यस्वरूप लोक... (विश्व)—अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश-व्यापक सर्व व्यापक (आकाश) जिसका अन्त नहीं है – ऐसा जो द्रव्य। (कहीं) आकाश का अन्त नहीं है। वह छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय, उसका आत्मा ज्ञायक-जाननेवाला; ज्ञेय के अवलम्बन बिना (जानता है)। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान ज्ञान की पर्याय में.. आहाहा! लोक और अलोक—जिसका अन्त नहीं, उसे भी ज्ञेय / परज्ञेयरूप से, स्वज्ञेय में—अपना ज्ञान करने से पर का ज्ञान—स्वपर प्रकाशक हो जाता है। वह पर का ज्ञान नहीं, वह ज्ञेय का ज्ञान नहीं; वह ज्ञान का ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

छह द्रव्यस्वरूप लोक... लोक, लोक! लोक शब्द में अलोक भी आ गया है, हों! अन्दर। जो ज्ञेय है, मात्र परज्ञेयरूप से ज्ञेय है। (वास्तव में) स्वज्ञेयस्वरूप भगवान

(निजात्मा), उसे (लोक) परज्ञेयरूप से ज्ञेय है। आहाहा! भगवान की मूर्ति और प्रतिमा और मन्दिर (अरे!) साक्षात् भगवान (तीर्थकरदेव) तीन लोक के नाथ, वे भी परज्ञेयरूप से हैं। समझ में आया? आहाहा! और वह (परज्ञेय) व्यक्त है। अपना जो स्वरूप अव्यक्त, (क्योंकि) बाह्य आया नहीं; इस अपेक्षा से सर्व बाह्य है—पर्याय भी बाह्य है—वस्तु भी बाह्य है; भगवान (आत्मा) अभ्यन्तर चीज अव्यक्तरूप से है, वह पर्याय और पर से भिन्न है। आहाहा!

यह क्या ऐसा उपदेश! कैसा होगा! यह कहीं जैन का होगा! जैन का होवे तब तो सामायिक करो, प्रौषध करो, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, अरे दया करो, यह सब (क्रियाकाण्ड) जैनधर्म नहीं है। यह तो राग (भाव) है। सुन न! समझ में आया भाई! वीतरागमार्ग (अलग है।) आहाहा!

ओहोहो! क्या अमृतचन्द्राचार्य ने अव्यक्त में से अर्थ निकाले हैं! अब कितने ही ऐसा कहते हैं कि गाथा तो बहुत सरल और सीधी है परन्तु अर्थ करनेवाले ने (टीका करनेवाले ने) गूढ़-गूढ़ कर डाली! गूढ़-गम्भीर अर्थात् क्या कहलाता है? दुरूह-दुरूह अर्थ कर डाला है! यह स्पष्ट किया, उसे दुरूह-दुरूह अर्थ कर डाला! अभी आयी है न वह पुस्तक, यहाँ नहीं? अभी आयी है न, विद्यानन्दजी (प्रकाशित) एक विद्यानन्दजी हैं न, उनकी तरफ से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, एकदम उल्टा-विपरीत! ऐसी बात है।

ओहो! आचार्यों का अर्थ (अमृतचन्द्र) आचार्य ने किया है। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य, आचार्य थे, महासन्त थे, वैसे यह अमृतचन्द्राचार्य महासन्त आचार्य थे। इन्होंने जो अन्दर में (मूल गाथा में) भाव है, उन्हें स्पष्ट व्यक्त प्रगट करके स्पष्ट किया है। तब वे लोग कहते हैं कि इन्होंने अर्थ करके (टीका रचकर) अर्थ दुरूह कर दिया है। पकड़ में नहीं आवे ऐसा कर दिया है। (उसकी बुद्धि में नहीं पकड़ में आवे) परन्तु नहीं पकड़ में आवे, इसके लिये कहीं.... यह 'इन्दिय जीणित्ता' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा! अब इसका अर्थ दुरूह कर दिया! (क्योंकि) द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भगवान (तीर्थकर की) वाणी को भगवान स्वयं इन्द्रिय! यहाँ तक (अर्थ करके) दुरूह कर दिया।

अरे भगवान! सुन न भाई! उन्होंने इसका जो भाव था, उसे स्पष्ट किया है। टीका

बनायी है, तो टीका में अर्थ स्पष्ट किया है। आहा! लोग नहीं कहते तुम मेरी टीका करते हो! वैसे यह अन्दर (जो) भाव हैं, उनकी स्पष्टता करके टीका बनायी है। अमृतचन्द्राचार्य गजब है! आहाहा!

कुन्दकुन्द आचार्य दिगम्बर सन्त, पंचम काल के... तीर्थकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके गणधररूप से काम किया है। अब उन्हें कहना कि (दुरूह कर दिया) क्योंकि स्वयं को पकड़ में नहीं आया, अज्ञानभाव है इसलिए।

सीधा कहे इन्द्रिय को जीतना... परन्तु इन्द्रियों को जीतना अर्थात् क्या? समझ में आया? यह तो अन्यमत में भी उन सूरदास में नहीं आता-ऐसा देखकर, वह (न दिखे इसलिए) आँखें फोड़ डालना, इसलिए आँखें फोड़ डाल, यह (कोई) इन्द्रिय जीतना कहलाता है? कान में लकड़ियाँ डाले, न सुनाई दे इसके लिये—क्या यह इन्द्रियाँ जीतना कहलाता है? आहाहा! और (स्पर्श) इन्द्रिय है जो पुरुष की (इन्द्रिय है), उसे काट डाले, वह (इन्द्रिय) जीतना कहलाता है?

बापू! इन्द्रिय जीतना किसे कहा जाता है? कि जो जड़ पदार्थ, ये इन्द्रियाँ शरीर परिणाम को प्राप्त जड़ और भावेन्द्रियाँ जो एक-एक-खण्ड खण्ड (विषय के) ज्ञान को बतलानेवाला जो भाग और जो (इन्द्रियों के विषय) जो परद्रव्य—जो भगवान (तीर्थकर) तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी (दिव्यध्वनि), वह सब इन्द्रिय का विषय होने से वह इन्द्रिय है। आहाहा! उसे भी इन्द्रिय कहा है, उसे जीतना अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़ देना। आहाहा! यह ज्ञेय कहा न! परज्ञेय, तो परज्ञेय का लक्ष्य छोड़ देना क्योंकि परज्ञेय में तू नहीं। वह व्यक्त है, उसका लक्ष्य छोड़ देना, क्योंकि व्यक्त में तू अव्यक्त उसमें नहीं—ऐसा स्वरूप है।

यह इन्द्रिय को जीतना अर्थात् शरीर परिणाम को प्राप्त जड़ (द्रव्येन्द्रिय) और भावेन्द्रिय तथा भगवान की वाणी और भगवान, देव-शास्त्र-गुरु और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, इन सबको इन्द्रिय कहा गया है क्योंकि अनीन्द्रिय ऐसा जो प्रभु-आत्मा, उससे भिन्न है; इसलिए उन सबको इन्द्रिय कहा गया है। इस अनीन्द्रिय और इसका लक्ष्य छोड़कर (अन्यत्र लक्ष्य करना, इसलिए वह इन्द्रिय) कहने में आया है।

अतीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, आनन्द के नाथ का शरण लेना-उसके आश्रय में जाना, उसका साक्षात्कार करना, उसमें अहंपने का अनुभव होना। अहंपने का (अनुभव)। आहाहा! अहंकार नहीं। आहाहा! यह मैं हूँ - ऐसा अर्थ-परिभाषा ऐसी है। पकड़ना-आत्मा को और ऐसा करना-ऐसा करना, ये सब भाषायें तो समझने के लिये हैं, बाकी तो वास्तव में तो जो अस्ति तत्त्व महाप्रभु ऐसा जो आत्मा, उसका अहंपना—‘यही मैं हूँ’ ऐसी मान्यता करना और अनुभव करना। आहाहा! हैं? कैसे करना? यह महाप्रभु-महा अस्तित्व प्रभु है, वहाँ दृष्टि लगाना, वह कोई बात है! वह इन (वचन अगोचर) वह कोई बात कोई समझ में आवे ऐसा है? वाणी में कितना आवे? वास्तव में तो जरा भी नहीं आवे... इशारा आवे इशारा... कथंचित् वक्तव्य कहा है और कथंचित् अवक्तव्य कथंचित् वक्तव्य यह अपेक्षा है। आहाहा!

ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु आत्मा का अन्तर में पर्याय से उसका आश्रय लेना अर्थात् उसके अहंपने-यह मेरा है-ऐसा मानना, अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! इसमें तो बहुत डाला है। इस पहले बोल में तो, हों!

ओहोहो! सम्मेदशिखर, गिरनार और शत्रुंजय, ये सब परज्ञेय हैं, कहते हैं। सिद्ध परज्ञेय हैं, अरे! ये शास्त्र हैं न, ये पृष्ठ हैं वे परज्ञेय। उनसे भगवान आत्मा (ज्ञात नहीं होता)। आत्मा उसमें आया नहीं, उससे भिन्न भगवान (आत्मा) है। आहाहा! ये शास्त्र जड़ है, वह परज्ञेय है। उसके वाँचन से ज्ञान होता है, वह ज्ञान नहीं।

श्रोता : आप कहते हो शास्त्र का वाँचन करना, विनय करना। वापस कहते हों वह ज्ञान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार-विनय तो व्यवहार से है, विकल्प है। यह विनय बाहर का विनय अर्थात् विकल्प; अन्दर का विनय वह निर्विकल्प। आहाहा!

श्रोता : शास्त्र का विनय वह नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र का विनय, वह शुभभाव है। भगवान त्रिलोकनाथ (तीर्थकरदेव) का विनय, वह शुभभाव है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! कठिन बातें भाई! नव तत्त्व में वह तो पुण्यतत्त्व में जाता है। भगवान (आत्मा) तो उनसे नव तत्त्व से-पुण्य-

पापतत्त्व से ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। वह तो बात यहाँ चलती है। आहाहा! यह छह द्रव्य जो एक ओर-पूरा लोक और अलोक (जिसमें) अनन्त केवली जो ज्ञेयरूप से-परज्ञेयरूप से हैं। आहाहा! मेरे वे देव हैं, इस रूप से वे नहीं - ऐसा कहते हैं।

अनन्त सन्त-गुरु, वे आत्मा के गुरु हैं - ऐसा नहीं। वे मेरे गुरु हैं - ऐसा वस्तु में नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐ मीठाभाई! ऐसी मीठी बातें हैं। आहाहा! क्या वीतरागी सन्तों के कथन! कहते हैं हम तेरे गुरु हैं, यह बात तू माने तो यह बात झूठी है; हम तो परज्ञेयरूप से तेरे हैं! आहाहा!

मुमुक्षु : छह पद के पाठ में श्रीमद् ने ऐसा लिखा है!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; उन्हें भी पर है न! आहाहा! उसमें ऐसा कहा है कि पाँचों उत्तर से हुआ समाधान सर्वांग होगी मोक्ष उपाय की यह प्रतीति-सहज, सहज पाँचों उत्तर से हुआ समाधान, प्रतीति होगी, मोक्ष उपाय का सहज-सहज किस प्रकार प्रतीति, इस प्रकार से।

भगवान आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का (नाथ)! अतीन्द्रिय ज्ञायक की मूर्ति प्रभु है और ये छह द्रव्य जो ज्ञेय हैं, वे तो उसके परज्ञेय हैं, स्वज्ञेय नहीं। वे (परज्ञेय) व्यक्त हैं, वे बाह्य हैं; अन्तर में नहीं। आहाहा!

अहा! अरे! जीव आदि बहिरतत्त्व कहा-वे बहिरतत्त्व हैं कहते हैं। संवर, निर्जरा, और मोक्ष की पर्याय भी बहिरतत्त्व है। अन्तरतत्त्व जो ज्ञायक त्रिकाल है, उससे यह (पर्यायमात्र) बहिर है। आहाहा! केवलज्ञान की अपनी पर्याय और संवर-निर्जरा की पर्याय भी बहिरतत्त्व है। भगवान (आत्मा को) वे परज्ञेयरूप से हैं। स्वज्ञेय (एक ज्ञायकभाव) तो उनसे भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है।

अरे रे! वास्तविक तत्त्व क्या? वह भी कुछ समझने में नहीं आता-कथन में नहीं आता अभी तो... (आहा!) यह प्ररूपणा—ऐसा करो, ऐसा यह करो, ऐसा करो! आहाहा!

भगवान तीन लोक के नाथ, (तीर्थकरदेव) सर्वज्ञदेव कहते हैं, वही सन्त कहते हैं। सन्त की टीका करनेवाले भी सन्त हैं। दुरुह नहीं किया, स्पष्ट किया है। आहाहा! जैसे गाय और भैंस के आँचल में (आऊ में) दूध होता है तो आऊ में रहे हुए दूध को चतुर

महिला होती है, वह उसमें से निकालती है। ऐसे पाठ के भाव में यह भाव है, उसे (टीका करके) निकालते हैं। स्वयं की (आचार्य की) टीका है, इसलिए वह भिन्न है और भाव में अन्दर नहीं, ऐसा है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल व्यतीत हुआ। आहाहा! अभी जलाकर आये नहीं होंगे? आ गये! है है, कहाँ है? ठीक! आ गये हैं, दूसरे सब नहीं आये होंगे, पौने छह ये कहते हैं निकाले थे। वह मुख्य, दूसरे तो गये आ गये, वहाँ से अवकाश लेकर, जलावे वहाँ तक वहाँ (सब तो) नहीं रुकते! गया वह परगति को चला गया। यहाँ बैठता था, यहाँ सुनने को सबेरे नहीं आ सकता था, दोपहर को आता था... ऐसी देह की स्थिति बापू!

आहा! वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। जो जो स्थिति होती है, वह ज्ञान ने परज्ञेय रूप से है। उसमें आत्मा को कोई आघात नहीं है और आत्मा में उसके कारण कोई नुकसान भी नहीं है। आहाहा! देह छूटने के प्रसंग में ज्ञानी को तो उसका ज्ञेयरूप से ज्ञान होता है। छह द्रव्य आये न! (परज्ञेयरूप से)। आहाहा! मेरा मरण होता है—मैं देह से छूटता हूँ—ऐसा नहीं। आहाहा!

श्रोता : देह से भिन्न तो पड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न? वह तो भिन्न ही मैं तो त्रिकाल हूँ—भिन्न ही हूँ तो भिन्न होऊँ कहा से?

श्रोता : संयोग है उसका वियोग होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहारनय की अपेक्षा से; वरना अन्दर में तो त्रिकाली भिन्न ही है। अरे! राग से भी वह तो भिन्न मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा है। जिसे (गाथा) १४-१५वीं में अबद्धस्पृष्ट कहा है! (भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा है)।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त! जिनका (मंगलाचरण में तीसरा स्थान है) मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यौ (जैन धर्मोस्तु मंगलं) पहले भगवान, पश्चात् गणधर, पश्चात् तीसरे कुन्दकुन्द आचार्य। ये कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं) कि पर्याय मात्र है, वह आत्मा को पर—ज्ञायक का ज्ञेय

है। आहाहा! जगत को बात जँचना कठिन है! अन्तःतत्त्व है, वह बाह्यतत्त्व से भिन्न है। ओहोहो! बाह्य तत्त्व कहा न, भाई! उस नियमसार, शुद्धभाव अधिकार में तो केवलज्ञान बाह्य तत्त्व! आहाहा! और मोक्ष का मार्ग जो प्रगट हुआ है—अन्तरतत्त्व के अवलम्बन से, वह भी बाह्य तत्त्व है। आहाहा! भगवान (आत्मा) तो अन्दर ज्ञायकतत्त्व जो चैतन्यमूर्ति प्रभु वह अन्तःतत्त्व है; बहिरतत्त्व से भिन्न है। ओहो! अन्तरतत्त्व से बहिरतत्त्व भिन्न है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी अन्तःतत्त्व से भिन्न है। आहाहा! अभी शरीर से (आत्मा को) भिन्न मानने में पसीना उतरे! यह देह मेरी, मैं हूँ तो चलती है—बोलती है (परन्तु भाई!) वह तो जड़ की क्रिया, क्या तुझसे हुई? आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं) छह द्रव्यस्वरूप (लोक परज्ञेय है) बहुत गजब कर दिया है। आहाहा!

एक ओर सत्य का—ज्ञायकस्वरूप जहाँ दृष्टि हुई, पर्याय जहाँ अन्तर में ढलकर उस छह द्रव्य का ज्ञान—स्वद्रव्य का ज्ञान हुआ, वहाँ तो मैं तो छह द्रव्य से और छह द्रव्यों के गुणों से और छह द्रव्यों की पर्यायों से (भिन्न हूँ) आहाहा! और छह द्रव्य का जो ज्ञान होता है, उस ज्ञान से भी मैं तो भिन्न हूँ। ऐई... नवरंगभाई! ऐसा है। जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है। आहाहा! एक बोल हुआ, छह बोल हैं। यह दिवाली और नूतनवर्ष—दो बड़े (दिन) (बोल) अव्यक्त के ठीक आ गये हैं।

दूसरा बोल! कषायों का समूह जो भावकभाव व्यक्त है, उससे जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है ॥२॥

(क्या कहते हैं)? जो कुछ अन्दर में पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम—क्रोध, मान, माया, लोभ उत्पन्न होता है, वह भावक अर्थात् कर्म जो भावक है, उसका यह भाव है। आत्मा भावक और उसके वे भाव नहीं हैं। आहाहा! कषायों का समूह... चाहे तो दया का भाव, दान का भाव, भक्ति का भाव, पूजा का भाव, यात्रा का भाव, भगवान की भक्ति में लाखों रुपये दान में (देना), वह सब कषायों का समूह है—राग है। कषायों का समूह भावकभाव।

(देखो)! ३२ वीं गाथा में कषाय का समूह भावकभाव आ गया है। एक ३६ वीं गाथा में 'नास्ति नास्ति मम कथन मोहः'—भावकभाव आ गया है। यह तीसरा यहाँ आया,

वह तीन भावकभाव। दूसरा मैंने पहले कहा था, सैंतालीस शक्ति में से, वहाँ भी भावकभाव है। सैंतालीस शक्ति में कर्तृत्वशक्ति है न! उसमें है न! कर्तृत्वशक्ति-४२वीं शक्ति-होनेपनरूप और सिद्धरूप भाव के भावकत्वमयी कर्तृत्वशक्ति...

क्या कहते हैं ? कि यह जो भावकभाव अपने अभी चलता है, वह तो पुण्य-पाप के विकारी भाव, भावककर्म का भाव है, अपना (आत्मा का) नहीं। आहाहा! अब अपना भावकभाव क्या ? कि अपने आत्मा में एक कर्तृत्व नाम का त्रिकाली गुण है। आत्मा जो वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। उनमें एक कर्तृत्व नाम का गुण है। कर्तृ, हों ? कर्तृ यह शब्द इन भाई को, पण्डित को कहा यह कर्तृ क्यों आया, कर्ता क्यों नहीं आया ? कर्तृ क्यों आया ? तो यह है शब्द संस्कृत की शैली है। कहते हैं। यह प्रश्न मैंने भाई को पूछा था। कर्ता नहीं आया और कर्तृ क्यों आया है ? है न, कर्तृ है न! देखो न! कर्तृत्व है न ? कर्ता नहीं आया, कर्तृत्व आया अर्थात् यह संस्कृत की शैली में आता है।

४२, क्या कहते हैं ? कि आत्मा में एक कर्तृत्व नाम का गुण, अनादि अनन्त पड़ा है। उस कर्तृत्व गुण का कार्य क्या ? कि जो निर्मल पर्यायभाव है, उसका भावक यह कर्तृत्व-शक्ति है। कर्तृत्व शक्ति-(गुण), वह भावक है और उसका (कार्य-भाव) निर्मल पर्याय आदि भाव है और यह जो विकारी भाव अभी चलता है, वह भावक-कर्म का भावक का भाव है। वह गुण का-भावक का भाव है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है बापू! उसमें भी यह दिगम्बर धर्म, यह जैनधर्म है। बहुत सूक्ष्म! आहाहा!

यहाँ कहा, आत्मा में कर्तृत्व नाम का गुण है तो उस गुण का धारक भगवान आत्मा ज्ञायक, उस ज्ञायक की दृष्टि करने से जो निर्मल पर्याय होती है, उसका भावक वह कर्तृत्व गुण है अथवा भावकद्रव्य अभेद से कहने में आता है। द्रव्य जो भावक है, यह निर्मल पर्याय उसका भाव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय के भाव का भावक यह द्रव्य है। इसलिए उसमें गुण है ऐसा लेकर...

यह जो निर्विकारी पर्याय होती है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धि, वह पूर्व की पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं, राग का अभाव हुआ इसलिए नहीं; आहाहा! वह कर्तृत्व नाम का भगवान में (आत्मा में) गुण अनादि-अनन्त पड़ा है तो उसके कारण, वह भावक

होकर दृष्टि जब द्रव्य पर है तो उस काल में भाव होकर सम्यग्दर्शन आदि पर्याय के भाव का भाव वह है। पूर्व की पर्याय का भाव नहीं-निमित्त का भाव नहीं। आहाहा! जैसे केवलज्ञान हुआ तो भी मोक्ष के मार्ग की पर्याय से वह भाव नहीं, यह केवलज्ञान की पर्याय हुई, वह कर्तृत्व गुण के-भावक का भाव है ऐसा सीधा...। आहाहा! समझ में आया? यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई! अभी तो लोगों को बाहर में एक तो बाईस घण्टे धर्म नहीं और पूरे दिन पाप करते हैं-धन्धा और व्यापार और पाप, स्त्री, पुत्र को सम्हालना... उसमें घण्टा (भर फुरसत मिले) तो इस बाहर की प्रवृत्ति में रुकते हैं। यह करो... यह करो... यह करो... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि कर्म जो जड़ हैं, वह निमित्त हैं, उसे भावक कहा और भाव उसके विकार परिणाम-दया, दान, व्रत, शुभ-अशुभ (भाव), व्यवहाररत्नत्रय का भाव, वे भावक के भाव हैं। भगवान आत्मा में भावक जो गुण है, उसके वे भाव नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात है। इसमें पड़ा है या नहीं यह सब अन्दर! आहाहा! यह है न!

भावक, उसमय सिद्धरूप भाव के सिद्ध अर्थात् सिद्ध ऐसा नहीं, उस समय होनेवाली पर्याय जो निर्मल है। सिद्ध अर्थात् उस समय में होनेवाली प्राप्य है। वह प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य। आहाहा! वीतरागी आत्मा की पर्याय-शुद्ध की पर्याय, जो भाव है, उस भाव का भावक वह सिद्ध है। सिद्ध अर्थात् उस समय में होनेवाली है। वहाँ यह आया जन्मक्षण है। आहाहा! उस उत्पत्ति का जन्मक्षण क्रमबद्ध में वह है। वह जन्मक्षण में है और सिद्ध अर्थात् उस समय में होनेवाली है। आहाहा! उसका भावक, आत्मा में कर्तृत्व नाम का उपादान-अन्दर शक्ति / गुण है, उससे यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय शुद्धि की वृद्धि होती है, वह भी भावक के भाव के कारण, पूर्व की पर्याय के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस भावकभाव से वह भावकभाव अलग / भिन्न है। कषायों का समूह जो भावकभाव... ये पुण्य-पाप के भाव व्यक्त है, उससे जीव अन्य है,... ये पुण्य-पाप के भाव, व्यवहाररत्नत्रय का राग जो भावक का भाव है, उससे आत्मा भिन्न है। उसे—आत्मा को यहाँ अव्यक्त अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान का विषय (ध्येय) कहा गया है।

विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)